उपसंहार

उपसंहार

जगदीशचंद्र माथुर के तीनों नाटक 'कोणार्क', 'शारदीया' और 'पहला राजा' को हिंदी साहित्य जगत् में अपना-अपना स्थान है। 'कोणार्क' कला का भाष्य है। उसे कलाकार की अंतर्दहन की अपेक्षा अंतदर्शन भी कहा जा सकता है। उसमें बुद्धि और हृदय का अपूर्व योग हुआ है। हृदयतत्व की प्रधानता के कारण 'कोणार्क' रंगमंच का काव्य बन पड़ा है। हिंदी नाट्य साहित्य के विकास क्रम में 'कोणार्क' की एक विशिष्ट भूमिका रही है। समसामयिक यथार्थवादी लेखन के बीच 'कोणार्क' को अद्भुत वैशिष्ट्य प्राप्त हुआ। इतिहास उनके लिए माध्यम मात्र रहा है- विचारों का वाहक मात्र। 'कोणार्क' में अंतस् की यात्रा भी है और लोक मंगल का भाव भी अनुभूति और आदर्श दोनों स्तरों पर वह हृदय को प्रभावित करता है। कोई भी कलात्मक लेखन अनुभूति और अनुभव पर आधारित होता है। 'कोणार्क' की नाट्यानुभूति काव्यानुभूति की भावभूमि पर स्थित है। अनुभूति की यह प्रामाणिकता उसकी अभिव्यंजना शैली को विलक्षण शक्ति प्रदान करती है। अंतर्सत्यों को उजागर करनेवाली यह कृति अनुभूति का ऐसा इंद्रधनुष्य बुनती है कि उसमें विषयवस्तु गौण हो गई है और अंतर्वस्तु मुख्य। इसकी अंतर्वस्तु बहुत सूक्ष्म है और कथानक के सूत्र बहुत क्षीण हैं। फलतः नाटककार को घटनाओं के बीच से बहुत कम गुजरना पड़ा है। उन्होने कथावस्तु में गति देने के लिए कथावस्तु के कवित्वमय संयोजन, सामानांतर प्रसंग, प्रतीक अथवा बिंब के द्‌वारा करते दिखाई देते हैं। कुंती और सूर्य का प्रसंग अप्रत्यक्ष रूप से विशु और शबर कन्या सारिका के प्रेम-संबंध और उसकी विड़बना को उभारता है। अम्ल पर कलश न स्थापित हो सकने की संकटमयी नाट्यस्थिति तथा एक विलक्षण कुतुहल प्रारंभ में ही नाटक को रोचक आकर्षण प्रदान करता है। ज्योतिषी का भविष्यवाणी इसका उदाहरण है। इसी अंक में भविष्य के संकेत भी मिलते हैं। राजराज चालुक्य का आतंक, शिल्पी धर्मपद के विद्रोही स्वर और विशु द्‌वारा निर्मित नाट्याचार्य सौम्यश्री की प्रतिमा के गले पर उकेरा गया कंठहार ये सभी कथावस्तु को आनेवाले संदर्भों से जोड़ते हैं और भविष्य में घटनेवाले घटना-चक्र के लिए आधार निर्मित करते हैं। द्‌वितीय और तृतीय अंक में कार्य को अपेक्षित गति से आगे बढ़ाया गया है। द्‌वितीय

अंक उत्कल नरेश की गुण-ग्राहकता, विशु की निस्वत्व महानता और धर्मपद की निर्भीक सामाजिकता का आभास करा देता है। अंत का पूर्वाद्र्ध चारित्र्य की रेखाओं और रंगों से भरा गया है। किंतु राजराज चालुक्य द्वारा आक्रमण का समाचार मोह-भंग और जागरण के आवेग से ओतप्रोत है।

तृतीय अंक कथावस्तु को चरम सार्थकता प्रदान करता है। तृतीय अंक अत्यंत सशक्त और प्रभावोत्पादक है। इस अंक में विशु के अंतर की पीड़ा, आक्रोश और पराजय का जैसा बिंब उतारा गया है, वह उसके एक-एक शब्द और एक-एक मुद्रा में व्यंजित हुआ है। नाटक का अंत रौद्र रूप धारी विशु के आक्रोश भरे शब्दों से होता है। किंतु उसका अंतिम प्रभाव करुणा का बन पड़ता है। इस प्रकार 'कोणार्क' अपने ढंग की कृति है।

माथुर जी के 'शारदीया' नाटक भी 'कोणार्क' की भाँति ऐतिहासिक कथा-सूत्र पर आधारित नाट्य कृति है। माथुरजी ने इतिहास का अपनी अनुभूति और स्वच्छंदतावादी कल्पना का केंद्रबिंदू बनाया है। उनके नाटकों में लेखन की मूल प्रेरणा ऐतिहासिक है। लेकिन कथावस्तु के विस्तार के लिए इतिहास की अपेक्षा अपनी अनुभूति और कल्पना पर अधिक निर्भर करते हैं। मुख्य वस्तु उनमें कल्पना है।

'शारदीया' का लक्ष्य भी इतिहास नहीं, ऐतिहासिक तथ्य द्वारा जाग्रत कल्पना है। 'प्राक्कथन' से स्पष्ट है कि इस नाटक को लिखने की प्रेरणा नाटककार को नागपूर संग्रहालय में रखी, ग्वालियर के एक तहखाने में कैद एक बंदी द्वारा बुनी पंचतोलिया साड़ी से मिली। जगदीशचंद्र माथुर ने ऐतिहासिक बुद्धि का विलक्षण प्रयोग किया है और इतिहास को यथेष्ठ सार्थकता प्रदान की है। इतिहास का सत्य सर्जेराव और कल्पना की सृष्टि नरसिंहराव कथावस्तु की अवधारणा में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं।

ख्यात कथावस्तु का यह अंश नाटक के पूर्वाद्र्ध में ही आ जाता है। इसमें एक समसामयिक संदर्भ भी बड़ी उज्वलता से उभरता है। वह खर्दा के युद्ध की संधि की शर्तों में एक है। वह समसामायिक लगने पर भी ऐतिहासिक है। जो है हिंदू-मुस्लिम एकता। नाटककार ने अपनी कल्पना द्वारा नरसिंहराव की सहिष्णुता और समभावना के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करने में समर्थ हुआ।

इतिहास के स्थूल शरीर की अपेक्षा अनुभूति और कल्पना की अभिव्यक्ति ही शारदीया की मूल सर्जनात्मक स्वीकृति है। अनुभूति मूल में है और कल्पना उसे सक्रिय करती है। 'कोणार्क' की भाँति ही इस नाटक की मूल अवधारणा भी काव्य के स्तर पर हुई है। इसलिए उसका केंद्रीय तत्व काव्यात्मक अनुभूति है। 'शारदीया' में इस अनुभूति का केंद्रबिंदु व्यक्तिवाद है। 'कोणार्क' की ही भाँति इस नाटक के केंद्र में भी व्यक्ति है। राजनीति की स्थूल घटनाओं के बीच बायजाबाई और नरसिंहराव के व्यक्तित्व प्रणय के अंतसंबंधों का चित्रण हुआ है। दोनों की ग्रामीण बाल्य-जीवन की स्मृति में अंकित प्रेम यौवन की देहरी पर पैर रखता है। शरीर के सौंदर्यबोध परक स्तरों से होती हुई मन का विषय बननेवाली यह प्रणयानुभूति मूलतः छायावादी है। न इसमें उद्दाम वेग है और न काम की तरलता, केवल एक बाल-सुलभ साख्य है, पवित्र और बेजोड़।

देह की प्यास अगर किसी में है तो सिंधिया में, जो इस शैशव सरल प्रेम को काराओं में बाँध देता है। द्विवितीय अंक में 'निसि दिन बरसत नैन हमारे' गीत के माध्यम से उस विवशता का चित्रण हुआ है जो गोपियों की भाँति बायजाबाई को भोगनी पड़ रही है। पर गोपियों की-सी विवशता के आगे वह झुकना नहीं चाहती। किंतु नियति उसे गोपी बनाकर ही रखती है। किसी की देह की प्यास उसके आत्मिक प्रेम के लिए बाधा बन जाती है।

अनुभूति की यह तीव्रता शारदीया के इस कल्पित प्रसंग को अद्भुत प्रामाणिकता प्रदान करती है। कल्पना का वास्तविक प्रयोग लेखक ने बायजाबाई के बजाय नरसिंहराव के संदर्भ में किया है। उसके आंतरिक स्वप्नों, सूक्ष्म सौंदर्यमूलक मनोभावों के जैसे मनःसृष्टि परक बिंब कल्पना के माध्यम से उभारे गए हैं, वे उसकी गहरी पैठ के परिचायक हैं। इस प्रकार नरसिंहराव के बंदी स्वप्न कल्पना का विस्तार प्राप्त कर सत्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। कलाकार के लिए, वस्तुतः मन एक सक्रिय सत्ता है जो अपने संस्कारों के अनुरूप बाह्य प्रकृति पर अर्थवत्ता का आरोप करती है। नरसिंहराव की स्थिति न ज्ञान की है, न वैराग्य की। न उसमें दैन्य है, न क्षुद्र अहं। कुल मिलाकर वह मानसिक स्वाधीनता का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

कल्पना और अनुभूति का सम्मिश्रण शारदीया को असाधारण भाव बोध से मंड़ित करता है। शारदीया में दो प्रकार की नैतिकता उभरकर आती है; एक सामंत वर्ग की और दूसरी

शोषित वर्ग की। सामंत वर्ग की नैतिकता, जो सिंधिया और घाटगे के क्रिया-कलापों में अभिव्यक्त हुई है। माथुरजी ने दोनों की क्रूर स्वार्थांधता और निर्मम आकांक्षा का बड़ा सुंदर मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। अपने यशस्वी भविष्य का निमंत्रण उन्हें स्वार्थ और षड़यंत्र की ओर ले जाता है और उसका शिकार बनते हैं बायजाबाई तथा नरसिंह। झूठ फरेब, आत्म प्रवंचना और स्वार्थ गर्भित आकांक्षा का आधार लिए सिंधिया और घाटगे के क्रिया-कलाप बायजाबाई और नरसिंह के करुण प्रेमकथा में अद्भुत आकर्षण प्रदान करता है।

'पहला राजा' नाटक में इतिहास या पुराण की सामग्री का उपयोग हुआ है। किंतु लक्ष्य में वह ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों से भिन्न है। कहा जाता है कि हर दशक के अपने विषय होते हैं। आधुनिक युग में 'मिथ' के प्रति एक नई धारणा जन्मी है। कहा जाता है कि आधुनिक जीवन की शून्यता की तुलना में मिथक बहुत पवित्र और सार्थक है। यथार्थवाद का आग्रह स्थूल तथ्य तक ही सीमित होता है, मिथक अंतर्सत्यों तक पहुँचने का प्रयास करता है। वह जीवन की व्याख्या और उसकी गहराई को ध्वनित करती है, चाहे वह झूठ हो या सच।

'पहला राजा' भी मिथक पर आधारित नाटक है। राजा पृथु की पौराणिक गाथा आदिम समाज व्यवस्था से संबंध है जब कोई राजा न था। 'पहला राजा' का कथानक दो आधार-सूत्रों से बुना गया है। एक के सूत्र हैं वेद और दूसरे के महाभारत और पुराण। नाटक की मूल कथा इन प्रसंगों पर आधारित है। (1) वेन के शव का मंथन और भुजापुत्र पृथु और जंघापुत्र कवष की उत्पत्ति, (2) पृथु का राजपद प्राप्त करना और कवष का निषादों का नेता बनना, (3) दस्युओं के निर्मम आक्रमण और सरस्वती की धारा का सूख जाना, (4) धरती के गर्भ से जीवन-रस का रीत जाना-भूख और अकाल की स्थिति तथा (5) पृथु द्वारा धरती की हरियाली लौटा लाने का प्रयत्न और उसकी विफलता। इसका 'पहला राजा' में मिथक, इतिहास और कल्पना का योग हुआ है।

स्वतंत्रता के बाद के शासक, शासित, सुविधाभोगी वर्ग उपेक्षित क्रुद्ध जन की प्रतीकात्मकता भी पृथु की कथा में दिखाई देती है। उर्वी धरती की लौकिक आत्मा को व्यंजित करती है। एक समय उसको चाहनेवाला पृथु उसे दस्यु कन्या समझकर रक्त मिश्रण के भय से उससे

विमुख हो जाता है। कवष ही उर्वी और उसकी उपेक्षित जनता का सच्चा साथी बनता है। शासक पृथु को वह 'अंक शायिनी' के रूप में ही ग्राह्य है सहधर्मिणी के रूप में नहीं, सहधर्मिणी का अधिकार अर्चना को मिलता है जो उसी अधिकार-भोगी मुनि वर्ग की कन्या है।

पृथु के राजत्व का अहसास सूत और मागध में है। आक्रमण करनेवाले दस्यु विदेशी, आक्रमणकारी के प्रतीक बनकर आए हैं। सुविधाभोगी वर्ग के प्रतीक मुनि लोग समाज को केवल पिछली व्यवस्था की देन मानकर अपने को भ्रम में रखते हैं। संदर्भ को उजागर करनेवाले समर्थ प्रतीकों में उर्वी, कवष, अर्चना तथा पृथु के प्रतीक अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। उर्वी पृथ्वी की ही दूसरी संज्ञा है। माथुर जी ने जड़ धरती और उपास्य भूचंड़िका के जीवंत प्रतीक के रूप में ही उसका चित्रण किया है। पृथ्वी के दोहन की सारी प्रतीकात्मक क्रिया के मूल में उर्वी की प्रेरणा विद्यमान दिखाई देती है।

अर्चि अथवा अर्चना को नाटककार ने ऐश्वर्य भोग और काम के साधक तत्व के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। पृथु पृथ्वी को सुहाग देने के लिए संघर्ष करता है- उसका पुरुषार्थ अपना है, अपने दायित्व के प्रति वह सजग है। किंतु राजत्व उसे मुखौटा लगता है जिसे बरबर दायित्व ने उसे पहना दिया है। वह उसका वास्तविक जीवन नहीं - उसके जीवन का वास्तविक स्वर हिमालय का संगीत है जो उसे सपने और शक्ति दोनों देता है। किंतु इन दो अंतर्विरोधों में बँटने का बाध्य है। दोनों उसे जीवन का अहसास देते हैं। एक का छोर है उर्वी और दूसरे का अर्चना। न उर्वी पूरा संतोष देती है और न अर्चना पूरा सुख। पृथु की मुख्य समस्या प्रकृति की चुनौती नहीं, मानव की दुर्बलता का बोध है। जिस पृथु में पहले अजेय, अक्षत पृथ्वी पर सबसे प्रथम पैर जमाने का अहंकार था- वही उसके स्नेह और कल्याण की प्राप्ती के लिए उसे माँ स्वीकार कर लेता है।

जगदीशचंद्र माथुर की चरित्र सृष्टि यथार्थ है। उन्होने अपने पात्रों के लिए जो नाट्य-संसार निर्मित किया है वह सर्वथा उसके अनुरूप है इसलिए वह यथार्थ है। उनके नाटकों का विषय इतिहास, जनश्रुति, मिथक और कल्पना पर आधारित है। उसके अनुरूप ही उनके पात्र एक प्रकार की विश्वसनीयता को उजागर करते हैं। ऐतिहासिक नाटकों की धारा में कोणार्क आता है

जिसमें इतिहास का यथार्थबोध झलकता है। शारदीया में रोमानी वातावरण झलकता है। उसके पात्र सुंदर और असुंदर, नैतिक और अनैतिक, सत् और असत् के निर्मम वास्तविकता में जीवन के मूल स्वर को वाणी देते हैं। 'पहला राजा' में मूल मानवीय यथार्थ का कही अधिक प्रामाणिक उद्घाटन करती है। किंतु माथुर का यथार्थ समाजवादी यथार्थ नहीं है। उनके नाटकों के सभी पात्र उनसे जो उपेक्षा रखता है उसका पूरा निर्वाह करते हैं। जिसका एक कारण यह है कि वे जीवन के यथार्थ के व्यक्त रूप होने पर भी नाटककार के स्वजात मानस बिंब भी हैं। वे इतिहास / मिथक की अंधकारपूर्ण गहराइयों से उभरते हैं, वे इतिहास या मिथक से उठकर स्वच्छंद विकास करते हैं। माथुर के नाटकीय पात्र सक्रिय अस्तित्व का बोध कराते हैं।

माथुर के नाटकीय पात्र युग भावना के विराट प्रतिनिधि हैं। कोणार्क में सहनशील विशु और विद्रोही धर्मपद कला के प्राचीन और नवीन युग का प्रतिनिधि है। दोनों कला की दो-युग प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। विशु कला को राजनीतिक चेतना और विद्रोही स्वरों से असंपृक्त रखना चाहता है किंतु धर्मपद पलायन की अपेक्षा उनमें अंतर्ग्रस्त होता है। धर्मपद महामात्य चालुक्य द्वारा शिल्पियों पर किए गए अत्याचार, भृत्यों की भूमि अपहरण, अकाल आदि यथार्थ स्थितियों के प्रति जागरूकता प्रकट करता है और अत्याचारी के विरूद्ध संघर्षरत भी होता है। पिता और पुत्र दोनों वर्गीय प्रतिनिधि के रूप में आते हैं और शिल्पी के प्रतिशोध अपने प्राण देते हैं। धर्मपद बार-बार जनशक्ति का जो उद्घाटन करता है, वह भी युग-दृष्टि का परिचायक है। 'शारदीया' के केंद्र में व्यक्ति का, 'कोणार्क' के मूल में समूह का और 'पहला राजा' की अवधारणा में समस्त मानवता के कल्याण का भाव सक्रिय है। 'पहला राजा' में पृथु सारे युग का प्रतिनिधि है। कवष, मुनि, उर्वि, सूत भी अपने-अपने वर्गों के प्रतिनिधि हैं। पृथु प्रकृति और मानव के विरोधी शक्तियों के केंद्र में स्थित है। वह अपने अस्तित्व और मानव कल्याण के लिए लड़ रहा है। वह पृथ्वी के दोहन में समाजवादी और श्रेष्ठतर जीवन पद्धति के स्वप्न साकार करता है। सभ्यता के विकास के प्रारंभिक युग के साथ-साथ वह अपने युग का यथार्थ भी उभारा है। अकेलेपन की पीड़ा, आस्थाहीनता, ऊब, भय, उद्विग्नता तथा तनाव को उभारकर उसने युग मानव के जीवन का मानवीय अर्थ प्रधान किया है। शुक्राचार्य आदि मुनियों द्वारा उत्पन्न, संकट, वर्णसंकर तथा

दस्युओं के प्रति घृणा का भाव, कवष का आक्रोशपूर्ण नेतृत्व सभी युग-संदर्भ को उभारते हैं। इसी प्रकार शारदीया में व्यक्ति की मौन विद्रोहवाली दृष्टि सामने आती है। माथुरजी ने अपने पात्रों को विचार या समस्या से जोड़ने में विश्वास रखते हैं।

व्यक्ति की प्रतिष्ठा भी माथुर के नाटकों की मूल प्रेरणा है। इसी कारण उनके पात्र सारे मानवीय संबंधों के बीच व्यक्ति की निजी सत्ता को भी उजागर करते हैं। माथुरजी के पात्र व्यक्तिवादी चेतना, व्यक्ति की अपनी ईहा, आशा-आकांक्षा, जीवन-पद्धति और स्वप्नमयी विचारधारा के प्रति जागरूक होती है। विशु, धर्मपद, नरसिंहराव, बायजाबाई, पृथु-उर्वी कुछ ऐसे ही पात्र हैं। 'शारदीया' के नरसिंहराव, साधारण को भी असाधारण दृष्टि से देखता है। प्रकृति में अपने लिए स्नेह और सौहार्द की खोज करता है और स्वप्न की दुनिया में विचरता है। कागल की बाल्यकाल की स्मृतियाँ, शरद-पूर्णिमा द्वारा जगाए स्वप्न, प्रतीक्षा, भागने का प्रयत्न, फिर नरसिंहराव की मृत्यु के झूठे समाचार आदि बायजाबाई को अंतर्मुखी बना देता है। 'कोणार्क' में कलाकार की पीड़ा उन्मुक्त होकर सामने आती है। प्रारंभ में विशु सारिका के प्रति अपने प्रेम और अपराध भाव को पाषाणी मूर्तियों के बीच छिपाकर रखता है। किंतु संदर्भ आते ही वह फूट पड़ता है और अंत में जब आहत धर्मपद के साथ उसे अपने संबंध का ज्ञान होता है तो उसका हृदय दो-दो पीड़ाओं से उद्विग्न हो उठता है। किंतु पुत्र ममता का तिरस्कार कर जब रोकने पर भी युद्ध में चला जाता है तो पुत्र के मरणासन्न संकट की सारी पीड़ा पिता के हृदय का आक्रोश बनकर सन्नद्ध हो जाती है और निर्माण विध्वंस में परिणत हो जाता है।

भावना का आवेग पृथु में भी है। लेकिन विशु, धर्मपद और नरसिंह की तुलना में वह बौद्धिक संतुलन से परिपूर्ण है। कर्म, काम, दुविधा और तनावों की विभिन्न दिशाओं में पृथु का आवेग बँट जाता है। वह बाहर से चट्टान की तरह लगता है; किंतु अर्चना न जाने कहाँ दरार खोज कर जब उसके हृदय में प्रवेश करती है तो वह पुलक कंप से रोमांचित हो उठता है और देह की अंजुली में भर लेता है। और भी कई स्थलों पर वह भावना का जीवन जीता है। राजा का मुखौटा पहनते हुए, भूचंड़िका का पीछा करते हुए, बाँध के टफटने पर और सबसे अधिक तब जब वह काम में ऊब का अनुभव करता है।

अनुभूति की तीव्रता माथुर जी के पात्रों में दिखाई देती है। प्रतीक तत्व की प्रधानता के कारण 'पहला राजा' भाव के स्तर को उतना प्रभावित नहीं करता किंतु शेष दो नाटक अनुभूति की ही देन है। 'पहला राजा' की तुलना में 'शारदीया' और 'कोणार्क' में अनुभूति की अपूर्व ऊष्मा है। अनुभूति कलाकार के हृदय की गहराई में उतरती है तो कल्पना का उद्भव होता है। माथुरजी के नाटकीय पात्र अनुभूति के साथ-साथ कल्पना की भी देन हैं। अनुभूति और कल्पना के योग से वे पूर्णता प्राप्त करते हैं। 'शारदीया' और 'कोणार्क' में अनुभूति का तत्व सर्वत्र मुखर है। उनके नाटकों में कल्पना के तत्व को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। 'कोणार्क' में चरित्रों की कल्पना के दो आयाम हैं - एक ओर वे रोमानी कोमल और सौंदर्य प्रेमी हैं; दूसरी ओर कलाकार के मानस में सोये हुए विद्रोह का उजागर भी है। 'पहला राजा' के पात्र मिथक के विश्लेषण, प्रतीक तत्व और आधुनिक संदर्भ से समन्वित होने के कारण कल्पना शक्ति के परिचायक हैं। कवष, उर्वी आदि के चरित्र कल्पनाशक्ति की ही देन है। भावना में डूबे हुए कई पात्र जीवन की एक विचित्र ज्योति, भावना की एक विशेष भंगिमा और कविता की-सी उठान लिए हुए दिखाई देते हैं। जगदीशचंद्र माथुर के पात्र एक समुचित जीवन जीते हैं। वे अपने मूलभूत गुणों का अंत तक निर्वाह करते हैं।

माथुरजी ने अपने पात्रों को सुनिश्चित सकारात्मक या नकारात्मक गुणवत्ता से युक्त किया है। माथुरजी के प्रमुख पात्र यथार्थमूलक आदर्शवादी की देन है। विशु में कुछ अंतर्द्वंद्व है वह भी अंतर्विरोधों में विभक्त नहीं है। पृथु कभी-कभी वायदे और चुनौती में किसे वरूँ इन मुखौटों को तुम भी सच मान बैठे जैसी दुविधापूर्ण स्थितियों का द्वंद्व भी उसमें है। कहीं कर्म और काम यथार्थ और आदर्श का द्वंद्व भी उसमें है। इसी प्रकार उर्वी अपने मन के मेघ की दो तालों में झाँकते पाती है और उसे मालूम नहीं कि वह कहाँ बरसे। किंतु यह द्वंद्व कथन के स्तर पर है। मन की गहराइयों में है।

'कोणार्क' में विशु एक ऐसी मनस्थिति में पहुँचता है जहाँ प्रतिशोध के सामने नाश और निर्माण एकाकार हो जाते हैं। इसी प्रकार 'पहला राजा' में सुख-दुख, जय-पराजय से ऊपर उठकर स्थित प्रज्ञता का परिचय देता है। मानस को उदात्त तत्वों की ओर ले जाना, त्याग और

उदारता का भाव विषमताओं के बीच भी सत् पात्रों में दिखाई देता है। लेकिन नरसिंहराव का चरित्र सामरस्य का सबसे जीवंत उदाहरण है। वह माथुर के नाटकों में सबसे अधिक पीड़ित पात्र हैं; किंतु वह उसका उदात्तीकरण करता है। उसका चरित्र इस बात का प्रमाण है कि कुंड़ा रूपांतरित होकर कितने ऊँचे अनुभव तक ले जा सकती है। उसकी असाधारण आकांक्षा अतृप्त रहकर विद्रोह भाव बन जाता है और वह अंतर्मुखी हो जाता है। तथा अपनी तुष्टि काल्पनिक आदर्शों और मनः सृष्टियों में करने लगता है। वह पिछले सुखद अनुभव के क्षणों में जीता है।

अनुभूति और कल्पना को उन्होने अपने नाटकों में स्थान दिया है। इसके माध्यम से माथुर पात्र के अंतर्जगत को इतना महत्त्व देने लगते हैं कि कथावस्तु गौण हो जाती है। उनके नाटकों में मानव और मानवीय संबंधों को प्रधानता है। इसलिए वह चरित्रप्रधान हो गई। 'कोणार्क' में सारा चरित्र नाट्यस्थितियों पर केंद्रित है- एक विमान पर कलश का स्थापित न हो सकना और दूसरा आक्रमण की स्थिति में पिता पुत्र संबंध का अभिज्ञान। 'शारदीया' में सारी पात्र षड्यंत्र के माध्यम से दो विरोधी पक्षों में उभरता है। विशु, नरसिंहराव, नरसिंहदेव, धर्मपद, बायजाबाई, कवष, उर्वी सब मुख्य पात्र छोटे और सामान्य जीवन को भी पूरी ईहा, आस्था सहज प्रवृत्तियों और सुदृढ़ कार्य क्षमताओं के बीच जीते हैं। इसीलिए माथुर के नाटकों में घटनाएँ साधारण पर पात्र असाधारण हैं।

माथुर के नाटकों में विशिष्ट ही नहीं साधारण-से-साधारण पात्र भी अपने विशिष्ट रंगों में उभरते हैं। उदाहरण के लिए 'शारदीया' की रहीमन, सरनाबाई, सरदार जिन्सेवाले, 'कोणार्क' के सौम्यश्रीदत्त, शैवालिक तथा 'पहला राजा' के सूत-मागध, सुनीथा, दासी आदि। बायजाबाई को गाना सिखाने के लिए पिता द्वारा नियुक्त नर्तकी रहीमन नाटकीय क्रिया कलाप की दृष्टि से एक सामान्य पात्र है। किंतु उसका गाना और संवाद भविष्य का पूर्वाभास देने में अपूर्व योग देते हैं। वह बायजा की मनःस्थिति को पहचानकर सर्जेराव को बताने में सफल हो जाती है। सर्जेराव घाटगे को वह सूचना ही नहीं देती; उसी की भाँति विड़ंबनापूर्ण व्यवहार भी करती है। रहीमन के विरोध में सरनाबाई का चरित्र विशिष्टता प्राप्त कर लेता है। बायजा को लेकर भागने के प्रयत्न में उसकी स्वामीभक्ति एक त्रासदी बनकर रह जाती है। इसी प्रकार गढ़पति सरदार

जिन्सेवाले के चरित्र समस्त मानवीय भावनाओं के साथ अंकित हुए हैं। 'कोणार्क' का सौम्यश्रीदत्त सूत्रवाही पात्र है। लेकिन मंदिर का नाट्याचार्य होने के नाते उसकी संगीतक 'गीत भास्करम' के अभिनव की चर्चा में विशु का पूर्व प्रणय प्रसंग उद्घाटित होता है। इसी प्रकार हम उसे एक बार फिर विशु के निकट पाते हैं वह भी एक-दूसरे रहस्योद्घाटन के अवसर पर, नाटक के अंत में। 'पहला राजा' में सबसे अकिंचन दासी हैरु किंतु नाटक में वह भी अपनी निश्चित भूमिका निभाती है।

ये सबे पूरक चरित्र के रूप में आते हैं। दासी सुनीथा का, रहीमन सर्जेराव का, सरनाबाई बायजाबाई का, सौम्यश्रीदत्त विशु का सहायक पात्र है। माथुर के पात्र प्रायः दो वर्गों में विभाजित दिखाई देते हैं। दोनों के अपने शिविर हैं और उनके प्रति दृढ़ आस्था भी। विशु और धर्मपद अपने संघर्ष में अकेले नहीं लगते। नरसिंहराव अपने संघर्ष में अकेला है। सर्जेराव घाटगे में सत्ता की और दौलतराव सिंधिया में देह की प्यास उनसे सब कुछ करवाती है। इसी प्रकार शुक्राचार्य, गर्ग तथा अत्रि मुनि अहं, वर्ण और वंश गौरव, वर्ण-भेद आदि परंपरागत संस्कारों से ग्रस्त हैं। राजराज चालुक्य महत्त्वाकांक्षी होने के नाते क्रूर है और शैवालिक, महेंद्र वर्मन आदि उसकी दासता का मात्र निर्वाह करते हैं।

माथुरजी के नाटकों में पात्रों का बाहुल्य नहीं है। उनमें प्रमुख पात्रों की संख्या भी अधिक नहीं है। सहायक और सूत्रवाही पात्रों का चयन भी मितव्ययिता के साथ हुआ है। उनके नाटकों में स्त्री पात्रों का भी बाहुल्य नहीं है। 'कोणार्क' में कोई स्त्री पात्र नहीं है। 'शारदीया' में बायजाबाई, रहीमन और सरनाबाई तीन स्त्री पात्र आए हैं। 'पहला राजा' में भी चार ही स्त्री पात्र आए हैं- उर्वी, अर्चना, सुनीथा और दासी।

उपलब्धियाँ -

जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों को लेकर प्रस्तुत शोध-कार्य शुरू करने से पूर्व मेरे मन में जो सवाल खड़ा हुआ था उसका यथातथ्य जवाब मेरे शोध-कार्य के दौरान प्राप्त हुआ है।

माथुर जी के नाटकों के सभी पात्र उनसे जो अपेक्षा रखता है उसका पूरा निर्वाह करते हैं। माथुर जी के नाटकीय पात्र युग भावना के विराट प्रतिनिधि हैं। व्यक्ति की प्रतिष्ठा उनके

नाटकों की मूल प्रेरणा होने के कारण उनके पात्र सारे मानवीय संबंधों के बीच व्यक्ति की निजी सत्ता को उजागर करते हैं। माथुर जी ने अपने पात्रों के लिए जो नाट्य संसार निर्मित किया है वह सर्वथा उसके अनुरूप है इसलिए वह यथार्थ है। 'कोणार्क' में सहनशील विशु और विद्रोही धर्मपद कला के प्राचीन और नवीन युग का प्रतिनिधि है। माथुर जी के पात्र व्यक्तिवादी चेतना, व्यक्ति की अपनी ईहा, आशा, आकांक्षा, जीवन पद्धति और स्वप्नमयी विचारधारा के प्रति जागरूक है। विशु, धर्मपद, बायजाबाई, नरसिंहराव, पृथु, उर्वी कुछ ऐसे ही पात्र हैं।

अनुसंधान की नई दिशा -

माथुर जी के साहित्य पर निम्नांकित विषय को लेकर स्वतंत्र रूप से अनुसंधान किया जा सकता है।

'जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों में चित्रित समस्याएँ'